तृतीय अध्याय : कृतियों का परिचय

तृतीय अध्याय

कृतियों का परिचय

कृतियों की संख्या :

पूर्व के अध्यायों में हम देख आये हैं कि साहित्यप्रियता महाराव लखपतिसिंह के व्यक्तित्व का प्रमुख लक्षण था । उनकी साहित्याभिरुचि मात्र भावुकता तक सीमित नहीं थी और न वे मात्र प्रशस्ति-काव्य लिखनेवालों को आश्रय देकर संतोष माननेवाले राजा में ही थे । काव्य की शास्त्रीयता के प्रति वे स्वयं सजग थे । उनके आश्रित कवियों की गुण-सम्पन्नता भी इस बात का प्रमाण है कि लखपतिसिंह की साहित्यप्रियता उच्च कोटि की थी । इस प्रकार उनके कृतित्व की पृष्ठभूमि महाराव लखपतिसिंह के व्यक्तित्व के इस तत्व में देखी जा सकती है ।

महाराव लखपतिसिंह के लिखे अधिक से अधिक सात ग्रंथों का नामोल्लेख मिलता है । इसका कोई लिखित प्रमाण स्वयं कवि के तथा उनके समकालीन किसी कवि के ग्रंथ में नहीं मिलता कि उन्होंने कितने और कौन कौन से ग्रंथ लिखे । अब तक परवर्ती अध्येताओं ने उनकी कृतियों का सूचनात्मक आंशिक परिचय दिया है जिसके समुचित परीक्षण की अपेक्षा है । ये सूचनाएँ इस प्रकार हैं :

(१) गोविंद गिल्लाभाई ने महाराव लखपतिसिंह की पाँच रचनाएँ मानी हैं । " राव लखपतिसिंह जी खुद भी कवि थे । उन्होंने – लखपति शृंगार १, लखपति मान मंजरी २, सुर तरंगिणी ३, मृदंग मोहरा ४, राग सागर ५, आदिक ग्रंथों बनाये हैं – – – – – – – – – – वह कविता में अपना नाम " लखधीर " रखते थे । " [१]

0000000

१ " भाषा कविन के टुंक चरित्रो " ले० गोविंद गिल्लाभाई, अप्रकाशित ग्रंथ बड़ौदा विश्व विद्यालय के हिंदी विभागीय हिंदी हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह, ग्रंथांक २०९ से उपलब्ध ।

(२) " मिश्रबन्धु-विनोद " में उक्त पाँच ग्रंथों में से केवल एक ही ग्रंथ का विवरण मिलता है । [२]

(३) श्री अगरचंद नाहटा ने इनके अतिरिक्त एक अन्यकृति " सदाशिव ब्याह " का विवरण दिया है, जिसकी संपूर्ण प्रतिलिपि इस लेखक के पास सुरक्षित है । [३]

(४) उपर्युक्त छः ग्रंथों के अतिरिक्त एक सातवीं रचना " लखपति भक्ति विलास " है, जिसका परिचय डॉ० कुँवरचन्द्र प्रकाशसिंह ने दिया है । [४]

oooooooo

२ " मिश्रबंधु-विनोद " द्वितीय भाग, लेखक : मिश्रबन्धु, पृ० ७२२-२३ : " नाम - (८६३/१) महाराव श्री लखपति, ग्रंथ लखपति शृंगार, कविताकाल १८१७ विवरण : ये कच्छ के महाराज थे । इनके ग्रंथ में ४४७ छंद हैं और " सुंदर शृंगार " के अनुकरण में बना है । - - - - - " लखपति शृंगार " की कविता का उदाहरण इस प्रकार है :

" कीनो लखपति कछपति भले सुनो कविभूप
सुंदर कृत अनुरूप यह रस तरंग रसरूप । "

३ " राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज ", द्वितीय भाग, पृ० २१६ ले० श्री अगरचन्द नाहटा, प्रकाशक : उदयपुर विद्यापीठ सरस्वती मंदिर, प्राचीन साहित्य शोध संस्थान, उदयपुर । १९४७ ——— राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में " सदाशिव ब्याह " की प्रति उपलब्ध है ।

४ " गोविंद गिल्लाभाई और श्री अगरचंद नाहटा दोनों ने कुल मिलाकर महाराव लखपतिसिंह के लिखे हुए सात ग्रंथों का उल्लेख किया है । " लखपति भक्ति विलास " का उल्लेख किसी ने नहीं किया है । यदि

——— अगले पृष्ठ पर

महाराव लखपतिसिंह की इन सात रचनाओं के अतिरिक्त कुछ फुटकल रचनाएँ लेखक को अपनी भुज(कच्छ) की शोध-यात्राओं के समय प्राप्त हुई हैं जिनमें से " लखधीर " और " कहरा लखपत " की छापवाले कुछ सवैये और कच्छी में रचित एक भजन प्रमुख है ।

महाराव लखपतिसिंह की कृतियों से सम्बन्धित उपर्युक्त निर्देशों की प्रामाणिकता की परीक्षा यहाँ की जाती है । जिन सात ग्रंथों का नामोल्लेख किया गया है उनमें से अनुपलब्ध रचनाओं पर सर्व प्रथम विचार कर लेना आवश्यक है।

उक्त सात रचनाओं में से " राग सागर ", " लखपति मान मंजरी " ("मृदंग मोहरा " उनकी प्रामाणिक कृति या किसी कृति का भाग जान पड़ती है ।जिस पर आगे विचार किया जायगा) की प्रामाणिकता और अस्तित्व दोनों संदिग्ध अवस्था में है । " राग सागर " के नाम से किसी कृति का पता न तो कच्छ के संग्रहालय में मिला और न उन संस्थानों में भी लग सका है जहाँ भुज (कच्छ) की पाठशाला के कवियों का साहित्य - गुजरात में उपलब्ध होता है । ऐसी स्थिति में, इस नाम की कोई कृति, जो महाराव लखपति कृत हो जब तक उपलब्ध नहीं होती

oooooooo

पिछले पृष्ठ से चालू ——

इसको भी मिला लें तो उनके लिखे ग्रंथों की संख्या आठ हो जाती है । "

" भुज(कच्छ) की व्रज भाषा पाठशाला " ले० डॉ० कुँवरचंद्र प्रकाश सिंह, पृ० १२, प्रकाशक : बड़ौदा विश्व विद्यालय, बड़ौदा ।

विशेष : यहाँ डॉ० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह असावधानी से छः के बदले सात की संख्या लिख गये हैं, परिणामस्वरूप लखपति के लिखे ग्रंथों की कुल संख्या आठ लिखी है जो उन्हीं की गिनती के अनुसार आठ के बदले सात ही है । इस कृति की प्रतिलिपि लेखक के पास सुरक्षित है ।

अथवा एतद्विषयक कोई प्राचीन एवं प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता, तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता ।

" लखपति मान मंजरी " या " लखपति मंजरी नाम माला " नाम से जो रचनाएँ हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में लेखक को देखने में आई हैं उनमें से कोई भी महाराव लखपति कृत नहीं है । यहाँ पर इतर रचनाओं को छोड़कर केवल इस नाम से मिलने वाली अनेक उन कवियों की रचनाओं पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है जो कि भुज(कच्छ) के दरबार से संबंधित है :

(१) " लखपति मंजरी नाममाला " : कनक कुशल
(२) " लखपति मंजरी नाममाला " : कुँवर कुशल
(३) " हरिजस नाममाला " : हमीर दान रत्नूं
(या " हमीर नाममाला")
(४) " पारसात नाम माला " : कुँवर कुशल
(५) " सुबोध चंद्रिका अनेकार्थ नाम माला " : फकीरचंद चौहान
(६) " विजय राज मंजरी नाम माला "
(७) " मान मंजरी "
(८) " अनेकार्थ मंजरी "
(९) " विरह मंजरी "
(१०) " रस मंजरी "
(११) " रूप मंजरी "
(१२) " नाम माला – – – – ? "
(१३) " राधारूप मंजरी : गोविंद गिल्लाभाई
(१४) – – – – – नाम माला " : भावदान रत्नूं

उक्त तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन नाम मालाओं

में से कोई भी महाराव लखपतिसिंह विरचित नहीं है, परंतु इतना अवश्य है कि उनकी रचना के प्रेरक वे ही थे। कारण यह था कि एक ही अर्थ के अनेक हिन्दी शब्दों का ज्ञान भुज जैसे अहिन्दी प्रदेश के कवियों के लिए अनिवार्य था। इतना ही नहीं, इसीलिए, महाराव लखपति द्वारा प्रस्थापित भुज की ब्रज भाषा पाठशाला में ये नाम-मालाएँ कवि शिक्षा का मुख्य अंग भी थीं। गुजरात में अन्यत्र भी ऐसी अनेक नाम-मालाएँ लिखी गई हैं।

इस परिस्थिति के संदर्भ में यदि सोचा जाय तो यह संभावना की जा सकती है कि लखपति ने भी ऐसी कोई नाम माला लिखी हो जो आज उपलब्ध नहीं होती। —— परंतु किसी सजग शोधक के लिए फिर भी यह समस्या बनी रहती है कि लखपति की ऐसी रचना कहाँ और कैसे ग़ायब हो सकती है? उनकी उपलब्ध रचनाएँ प्रायः उन्हीं के काल में लिखी मिलती हैं। यदि " लखपति मान मंजरी " लखपति द्वारा रचित होती तो वह स्वयं शासक की कृति होने के कारण अवश्य सुरक्षित होती जैसी उनकी अन्य रचनाएँ हैं। दूसरा यह भी कि " नाम-माला " होने से उन्हीं के द्वारा प्रस्थापित ब्रजभाषा पाठशाला में वह अध्ययन-अध्यापन में उपयोगी होने के कारण सुरक्षित ही नहीं होती अपितु उसकी अन्य प्रतिलिपियाँ भी हो गई होतीं। अतः यह भी सम्भव है कि लखपतिसिंह के नाम पर लिखी गयी हमीर कृत " लखपत गुण पिंगल" तथा कुँवर कुशल कृत "लखपति पिंगल" जैसे ग्रंथों की भाँति यह भी किसी अन्य कवि की रचना हो। केवल लखपत नाम जुड़ने से उनकी कृत मानना भ्रम से परे नहीं है। इस रचना के संबंध में दूसरा यह निष्कर्ष सामने आता है कि जब तक ऐसी कोई प्रामाणिक रचना या तत्संबंधी सूचना नहीं मिलती तब तक कुछ भी नहीं कहा जा सकता परंतु जहाँ यह संभावना है कि लखपतिसिंह ने ऐसी कोई रचना लिखी हो वहाँ उनके नाम पर किसी अन्य कविकृत प्रशस्ति परक रचना के अस्तित्व को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अस्तु, प्रस्तुत विवेचन के आधार पर, उनकी शेष पाँच उपलब्ध रचनाओं पर ही विचार किया जा सकता है जो काल-क्रमानुसार इस प्रकार

है ।

(१) सुरतरंगिणी (२) लखपति शृंगार (३) लखपति भक्ति विलास (४) सदाशिव ब्याह और (५) मृदंग मोहरा ।

ये सभी रचनाएँ आज हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में ही उपलब्ध हैं जिनकी एकाधिक प्रतियाँ भुज (कच्छ), जोधपुर, पाटण, हिंदी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्व विद्यालय, बड़ौदा में लेखक के देखने में आई हैं । अतएव प्रस्तुत विवेचन में इन्हीं को आधार बनाया गया है। दूसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि एक ग्रंथ की एकाधिक प्रतियाँ महाराव लखपति की समकालीन होते हुए भी पाठभेद की दृष्टि से उनमें यत्र-तत्र अंतर पाया जाता है । अतएव कृतियों के विवेचन के अंतर्गत प्रसंगानुसार हस्तलिखित ग्रंथों का परीक्षण भी यथासंभव किया जा रहा है ।

(१) " सुरतरंगिणी " :

<u>प्रति-परिचय</u> : महाराव लखपतिसिंह की उपलब्ध रचनाओं में कालक्रमानुसार " सुरतरंगिणी " उनकी प्रथम रचना है। इसका रचनाकाल अंतःसाक्ष्य के आधार पर सं० १७९५ है ।[५] इसकी दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं । कच्छ के राजकीय हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह, भुज की प्रति का लिपिकाल सं० १८८८ है और राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति का सं० १९१४ । भुजवाली प्रति अधिक पुरानी है । वह जर्जरित अवस्था में है । प्रत्येक पृष्ठ को कहीं न कहीं कीड़ों ने खा डाला है । फिर भी अच्छी लिखावट में होने के कारण सुवाच्य है । जोधपुर की प्रति की स्थिति अधिक अच्छी है । उसके पृष्ठ १०९ हैं । प्रत्येक पृष्ठ में ९

ooooooo

५ " आदि " के छंद ८ में रचनाकाल का साक्ष्य द्रष्टव्य है ।

पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में लगभग २८ अक्षर हैं । २५" १२ " साइज़ की यह प्रति सुन्दर एवं सुवाच्य है । भुजवाली प्रति में कुल छंद संख्या १३८० है तथा जोधपुर वाली प्रति की कुल छंद संख्या १३६८ है । भुजवाली प्रति अधिक प्राचीन है, अतः उसके आधार पर " सुर तरंगिनी " का आदि-अन्त प्रस्तुत किया जा रहा है :

आदि : " ।। श्री महागणाधिपतये नमः ।। ॐ नमः ।। अथ
सुरध्याय सुरतरंगिनी लिख्यते ।। श्री ।।

" ब्रह्मा विष्णु महेस मिल । करो कृपा बुधि दाई ।।
जासौं सप्तध्याय ये करौं संगीत बनाई ।।१।।
सदा आनंद सारदा सुरमतिदा मन जांन ।।
बंदित तेरे चरन हित ।। बुधि प्रकाश हीय आंनि ।।२।।
बिघन हरन मो बिघन सब हरो कृपा करि आई ।।
गजमुष सनमुष के करो । यह बिनती सुषदाई ।।३।।
ग्याता गुरन जो राग में । सुषदाता हीय आनि ।
ताल काल में बिमल मति । हुते इनाइत आंनि ।।४।।
करता जे संगीत के भेतादिक मुनि जेई ।
तिनको करत प्रनाम हों । मन वचकृम के सेई ।।५।।
सुर बांनी को बोध अति हवै जो कठिन सुजान ।।
याते भाषा जगत में सबको प्रिय सुषदान ।।६।।
रत्नाकर संगीत कों ले के मति सुषसारन ।।
नाम धर्यो या ग्रंथ को सुरतरंगिनी चारन ।।७।।
सत्रह से पंचानबे संवत लहे गुरुवार ।
वैसाषी सुदि षष्ठि कों कियों ग्रंथ सुषसार ।।८।। "

अंत :

" रागादिक गीतादिकें हाव भाव रस भेद ।। सब को नीके
कर कहो

माविक लछन वेद ।।५५।। तानसेन मत आन के भरत ही चित लगाये ।। संगीत मूर्छन आदि सब दीनहिं भेद बताये ।।५६।।
" इति श्री सुरध्याय सुरतरंगिनी ग्रंथ संपूर्ण समाप्त: ।। श्री कल्यानणमस्तु ।। श्री रस्तु ।। श्री ।। संवत् १८८८ना वर्षे वैशाष मास शुक्ल पक्षे १ प्रति पद्मायां तिथौ भोमवारे ।। ।। लिखावितं चिरंजीवी दिन दिन अधिक प्रतापराउ श्री ७ भारमल्ल जी तस्यात्मज चिरंजीवी राउ श्री देशल जी दिन दिन अधिक प्रताप ।।
।। लिखतंग धारक प्रागजी हरजी आणी श्री भुज नगर मध्ये ।।
श्री ।। श्री ।। श्री ।। "

<u>प्रामाणिकता :</u>

महाराव लखपतिसिंह की रचनाओं के अंतर्गत इस कृति को गिनाते हुए भी डॉ० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह ने इसके आदि-मध्य और अंत में कर्ता के नामोल्लेख के अभाव के प्रति ध्यान खींचते हुए लिखा है कि : " यह एक विचारणीय प्रश्न है क्योंकि महाराव लखपतिसिंह के जो ग्रंथ उपलब्ध हैं, उन सब में उन्होंने अपना नाम दिया है । " [६] इस तथ्य को अनुमोदित करते हुए श्री अगरचंद नाहटा ने भी डॉ० सिंह की उक्त बात को दोहराया है । [७] इस चर्चा के अंतर्गत उक्त दोनों विद्वानों ने ग्रंथ के आरंभ में छंद संख्या ४ में कवि द्वारा दिये गये इनायतखान के नाम को लेकर ग्रंथकर्ता के संबंध में जो तर्क उपस्थित किया है, उस पर विचार करना सर्वप्रथम आवश्यक है ।

ग्रंथारंभ का चौथा पद्य इस प्रकार है :

" ग्याता गुरन जो राग में सुष्दानी हीय आनि ।
ताल काल में बिमल मति हुते इनाइत खांनि ।।४।। "

oooooooo

६ भुज(कच्छ) की व्रजभाषा पाठशाला, पृ० १७

७ " संगीत " मासिक पत्रिका, सितम्बर, १९६५ का अंक, पृ० ३५, ३६ और ४२ लेखक : श्री अगरचंद नाहटा, लेख : " कच्छ में रचित संगीत विषयक चार हिंदी ग्रंथ ", संगीत-कार्यालय, हाथरस(उ०प्र०) से प्रकाशित

(१) इसके विरुद्ध में यह कहा जा सकता है कि " हुते इनाइत खानि " लिख कर कवि भूत-काल में हो गये किसी इनायत खान की प्रशंसा कर रहा है, जैसे पाँचवें छन्द में भरत आदि का उसने सम्मानपूर्वक स्मरण किया है, जैसे :

" संगीत के भर्तादिक मुनि जेई । तिन को करत प्रनाम हौं ।।
मन वच कृम के सेई ।।५।। "

(२) लखपतिसिंह के दरबार में संगीतज्ञ और उनके गुरु के रूप में यदि इनायत खान होते और " सुर तरंगिनी " की रचना करते या उसमें सहायता पहुँचाते तो उनके दरबार के ही आचार्य कुँवर कुशल अपने ग्रंथ " लखपति जससिंधु " में उनका उल्लेख अवश्य करते ।

(३) गोविंद गिल्लाभाई ने लखपतिसिंह के दरबार में किसी हिन्दू, न कि मुसलमान, गवैये के होने का और इस रचना में सहायता पहुँचाने का उल्लेख किया है ।[८] लखपतिसिंह के आश्रित कवि कुँअर कुशल ने अपने ग्रंथ " कवि रहस्य " में मयाराम चौहान और फकीर चंद चौहान का उल्लेख किया है जो मुसलमान न होकर हिन्दू हैं ।[९]

oooooooo

८ " राव लखपत जी खुद कवि थे – उन्होंने लखपत शृंगार (नयका भेद) १, लखपत मंजरी २, आदि ग्रंथ बनाये हैं । और हिन्दुस्थानी एक नायका गायन कला में महा प्रवीण थी । उन्होंने घर में रख ली थी । उन्हीं की और हिन्दी गवैये की सहायता से सुरतरंगिनी १, मृदंग मोहरा २, राग सागर ३, आदिक ग्रंथ बनाये हैं । लखपत जी संवत् १८१७ में स्वर्गवासी भये " —— " भुज(कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला", पृ० २४

९ " अब लखपति आबैर लौं । मुदित भेजि फुरमान ।
बेगि बुलाये प्यार करि चातुर अति चहुआन ।।१९।।
मयाराम आये सुमन । सुत फकीरचंद संग ।
सपरिवार राखे समुझि । संगीती सरबंग ।।२०।। (लखपत जससिंधु)

अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि इनायतखान " सुर तरंगिनी" के रचयिता नहीं हो सकते । गोविन्द गिल्लाभाई ने महाराव लखपतिसिंह के दरबार की "हिन्दुस्थानी नायकन " और " हिन्दी गवैये " की " सुर तरंगिनी " की रचना में सहायता का जो उल्लेख किया है वह भी सन्देह से परे नहीं है क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ में कहीं भी एतद्विषयक संकेत नहीं मिलते । अतः ऐसी स्थिति में रचयिता के रूप में " सुर तरंगिनी " के अन्तर्गत लखपतिसिंह का नामोल्लेख न होते हुए भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि इसका रचयिता कोई अन्य व्यक्ति है ।

दूसरी ओर उनके द्वारा "सुरतरंगिनी" की रचना करने की सम्भावनाएँ यहाँ विचारणीय हैं । द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत हम विस्तार के साथ यह लक्ष्य कर चुके हैं कि लखपतिसिंह ने संगीतशास्त्र के विद्वानों और गवैयों को दूर दूर से बुलाकर विशेष सम्मान के साथ दरबार में रखा था और इतना ही नहीं, दरबार की सभी गायिकाओं को " संगीत रत्नाकर " के आधार पर उनके द्वारा सुशिक्षित भी करवाया था । पूर्ववर्ती अध्याय में हम इस पर भी विचार कर चुके हैं कि "संगित रत्नाकर " के प्रति महाराव का विशेष आकर्षण था और वे उसे संगीत का श्रेष्ठ शास्त्रीय ग्रन्थ मानते थे, इस बात की पुष्टि उनकी निम्नलिखित उक्तियों से भी हो जाती है :

" ब्रह्मा विष्णु महेस मिल करो कृपा बुधि दाई ।
जासों सप्तध्याय ये करों संगीत बनाई ।। १ ।।

रतनाकर संगीत कों लेके मति सुखसारन ।
नाम धर्यो या ग्रंथ को सुरतरंगिनि चारन ।।७।। "

" सुरतरंगिनी " के अतिरिक्त महाराव लखपतिसिंह की अन्य कृति " सदाशिव-ब्याह " में नृत्य और संगीत शास्त्र की जो चर्चा आती है उससे भी यह सिद्ध होता है कि वे इस क्षेत्र में " संगीत रत्नाकर " को सब से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मानते थे । उनके निम्न लिखित दोहे से स्पष्ट है कि नृत्य और संगीत का विवेचन भी उन्होंने इसी ग्रन्थ के आधार पर किया -

" चउ धातुक तुक चउ चतुर ऐसे गीत अपार ।
लषि संगीत लषपति कहै रतनाकर सार ।। " [१०]

"(सदाशिव ब्याह," छंद संख्या १५८)

इस दोहे के आगे भी वे संगीतशास्त्र की चर्चा इसी के आधार पर करते हैं अतः महाराव लखपतिसिंह की प्रामाणिक रचना " सदाशिव-ब्याह " द्वारा भी इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि बहुत कुछ संभव है कि " सुरतरंगिनी " के रचयिता महाराव लखपतिसिंह ही हों । कृति के अन्तर्गत कवि के नाम की छाप के अभाव का समाधान उसके अंतःसाक्ष्य से हो जाता है जिसमें वे लिखते

oooooooo

१० द्रष्टव्यः महाराव लखपतिसिंह विरचित " सदाशिव-ब्याह ", राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में इसकी हस्तलिखित सम्पूर्ण प्रति उपलब्ध है ।

है :

" ब्रह्ना विष्णु महेस मिल । करो कृपा बुधिदाई ।
जासौं सप्तध्याय ये करौं संगीत बनाई ।। १।। "

ग्रंथारंभ की यह प्रतिज्ञा कवि के इस कथन से भी पुष्ट होती है कि वह अपने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना " संगीत- रत्नाकर " के अनुसार कर रहा है, क्योंकि " संगीत-रत्नाकर " में भी सात अध्याय दिये गये हैं । [११]

इस प्रकार " सुरतरंगिनी " के रचनाकार ने " संगीत-रत्नाकर " के अनुसार सात अध्याय रचने की प्रतिज्ञा ली थी, परंतु उसका निर्वाह वह तीन अध्यायों तक तो कर पाया परंतु शेष चार अध्यायों को स्पर्श किये बिना ही अपने ग्रंथ को समाप्त कर दिया । कवि ने इन तीन अध्यायों का शीर्षक भी " संगीत-रत्नाकर " से ही लिया है और प्रत्येक अध्याय के आरंभ और अंत की सूचनाएँ दी हैं । देखिए :

(१) " ।। अथ सुरध्याय लिष्यते ।।
और ।। इति सुरध्याय संपूर्ण समाप्त : ।। "

(२) ।। अथ रागध्याय लिष्यते ।। "
और "।। सुरध्याय सुभ कहे, कहौं रागध्याइ बनाई ।
परकीरन अध्याय अब प्रगठित निज मत काइ ।।७३२।। "
" ।। इति श्री रागध्याय समाप्तः ।। "

oooooooo

११ " संगीत रत्नाकर ", संपादक पंडित एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, वाल्यूम १ का इण्ट्रोडक्शन, डॅा० सी० कुण्हन राजा, पृ० viii पर " संगीत-रत्नाकर " के सातों अध्यायों का विवरण दिया है :
प्रथम अध्याय स्वर, द्वितीय राग, तृतीय प्रकीर्णक, चतुर्थ प्रबंध, पंचम ताल, षष्ठ वाद्य और सप्तम नृत्य ।

(३) " ।। अथ परकीरन अध्याय लिख्यते ।। "

उक्त सूचनांशों से यह समझा जा सकता है कि तीसरे अध्याय के आरंभ की तो सूचना कवि ने दी है परंतु उस अध्याय की समाप्ति का उल्लेख नहीं किया है इसके स्थान पर ग्रंथ का उपसंहार कर रहे हों ऐसा प्रतीत होता है ।

इससे यह फलित होता है कि कवि अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह नहीं कर पाया है । दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि ग्रंथ के अंत में ग्रंथ के निष्कर्ष के रूप में माहात्म्य कथन, जो प्रायः लखपतिसिंह के सभी ग्रंथों में आता है, " सुरतरंगिनी " में नहीं है । इसलिये भी यह निश्चय मालूम पड़ता है कि " सुरतरंगिनी " उनकी अपूर्ण रचना है ।

इन तथ्यों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि यदि इस ग्रंथ के आगे के अध्याय मिल जाँए तो लखपतिसिंह के द्वारा ग्रंथकर्ता के रूप में दिया गया अपना नाम प्राप्त हो भी जाय ।

" सुरतरंगिनी " का वर्ण्य-विषय :

जैसा कि अभी देखा गया है यह संगीत-शास्त्र संबंधी विशिष्ट ग्रंथ है जिसकी रचना शार्ङ्गदेव कृत " संगीत-रत्नाकर " के आधार पर की गयी है । ग्रंथ की विषय-वस्तु को तीन अध्यायों में रखा गया है जो इस प्रकार है :

<u>सुरध्याय</u> : इस अध्याय में ५९२ छन्द हैं । नाद स्तुति, ब्रह्म स्तुति, संगीत फल, मार्गवर्णन, चतुर्दश नाड़ी नाम, नाद महिमा, शरीर उत्पत्ति, श्रुति लच्छन, काल लच्छन, सुर लच्छन, विकृत लच्छन, तीव्र कोमलादि ज्ञानविधि, विवादी ज्ञानविधि, अनुवादी ज्ञानविधि, ग्रामविचार वर्णन, मूर्च्छना नाम कथन, तान लच्छन, ग्रामवर्णन, प्रस्तारज्ञान

विधि, नष्ट ज्ञान विधि, षड्मेरन ज्ञानविधि, चतुर विधि सुरकर्थनं — यह सुरघ्याय की वर्ण्य-वस्तु है ।

रागाघ्याय : इसमें ७३२ छन्द हैं । इसमें रागरागिनियों को देव-देवी रूप में कल्पित करके पुत्रभार्या-पद्धति के अनुसार उनका रूपगत वर्णन किया गया है । इस पुत्र-भार्या-पद्धति का विस्तार पुत्र और पुत्रवधू तक किया गया है । सर्व प्रथम राग भैरव को शिवरूप में वर्णित करके भैरव की भार्याओं में मध्यमाध, भैरवी, बंगाली, वैरारी, सैंधवी को गिनाया है । उनका मूल तथा भैरव से उनका संबंध निर्देश करके स्वरूपवर्णन भी किया गया है । भैरवसुत के रूप में देसकार, बिभास, षटराग, बरवे, बड़हंस इन पाँचों को गिनाकर क्रमशः उनकी भार्याओं के रूप में जैजेवंती, इमन केदार, पूर्वी, जोत श्री, सोरठ का भी स्वरूपवर्णन किया गया है । इस प्रकार भैरव राग का सपरिवार वर्णन समाप्त किया गया है ।

इस दृष्टिकोण और पद्धति से कवि ने राग मालकौंस, हिंडोल, दीपक, श्री राग और मेघराग का भी सपरिवार वर्णन पद्यांक ११६ तक किया है ।

इस वर्णन के संदर्भ में पहले कवि ने भैरव की भार्याओं तथा पुत्र देसकार और बिभास के वर्णन के बाद यह लिखा था :

" पुत्र पिता के रूप पर ।। के जननी के रूप ।।
धर्मपुत्र को पाइयें ।। यामें सुषद अनूप ।। २५ ।। "

" जननी तीय के रूप पर ।। परे पुत्र कहूं नांहिं ।।
यह रीति इक भांति की प्रगट जगत के मांहि ।। २६ ।। "

अब कवि उक्त सभी रागों के सपरिवार वर्णन कर देने के बाद यह लिख

कर आगे की चर्चा की भूमिका प्रस्तुत करता है :

" एक ठौर सुत बरन कैं तीय बरनी पुनि सोई ।
यह कैसैं उर आनीयैं प्रश्न महा हिय जोई ।। ११८ ।।
नारी पुरुष बिहाह है तिय तिय मैं नहिं होई ।
या ते ए सुत नहिं धरे प्रश्न बडो हीय जोई ।। ११९ ।। "

ऐसा लिखने के पश्चात् कवि " अथ द्वितीय मत सुत अर्थ " आरंभ करते हैं । इस प्रकार छ: रागों के पुत्ररागों के विषय में द्वितीय मत भी प्रस्तुत किया गया है जो छंद क्रमांक १२० से १४७ तक चलता है । छंद क्रमांक १४८ से २३९ तक रागों के शुद्ध, सालगि अर्थात् संलग्न और संकीर्ण रूपों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् अब तक उल्लिखित रागों एवं रागिनियों के संयोग-वियोग का शृंगारयुक्त सुंदर काव्यमय वर्णन प्रारम्भ होता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न रागिनियों का नायिकारूप कल्पित करके किया गया उनका रूपवर्णन, वियोगवर्णन बड़ा ही उत्कृष्ट बन पड़ा है जैसे :

गाँव की ग्वालिनी के रूप में रागिनी को कल्पित करके कवि कहता है :

रागिनी अहीरी :

" मंथनी महि पर दधि भरे चपल मथ्यानीं हाथ ।
चितवति अतिहिं यादसों देषत सुष मन साथ ।। ६७६ ।।
जंघ जुगल छबि उरज लषि उपजित मनमथ आई ।
रूप सलिल में मीन सैं भये नैंन अति भाई ।। ६७७ ।।
बरत सब सुष पाइ कैं इहिं बिधि सों सुनि मित्र ।
देषि रही री चाइ सों राग अहीरी चित्र ।। ६७८ ।। "

<u>परकीरन-अध्याय :</u> " सुरतरंगिनी " के तृतीय अध्याय का शीर्षक है " परकीरन-अध्याय " जो ५४ पद्यों में समाप्त होता है । इसमें कवि ने आलाप के लक्षण एवं प्रकार, गमक की परिभाषा एवं प्रकार तथा इन प्रकारों में से प्रत्येक के लक्षण दिये हैं । इसके अनंतर गायक के दोष अर्थात् दोष युक्त गायन के लक्षण तथा सदोष के बाद अदोष गायन का भी वर्णन किया गया है ।

इसके साथ ग्रंथ समाप्त होता है ।

(२) " मृदंग-मोहरा " :

जैसा कि पहले हम देख आये हैं गोविंद गिल्लाभाई ने महाराव लखपतिसिंह की इस रचना का नामोल्लेख किया है । उन्होंने यह भी लिखा है कि इसकी रचना महाराव लखपतिसिंह ने किसी " हिन्दुस्थानी नायकन " और हिन्दी गवैये की सहायता से की है । " सुर तरंगिणी " के कृतित्व की चर्चा के अंतर्गत इसके बारे में लेखक ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है कि — — — — —

" मृदंग मोहरा " के ग्रंथांश की उपलब्धि तथा परिचय :

गोविंद गिल्लाभाई के ग्रंथ-संग्रह का जो अंश बड़ौदा विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह में वर्तमान है उसमें इस रचना का कोई अस्तित्व नहीं है । यह पूर्ण रूप में नहीं मिलता । इसका जो भी अंश विद्वानों को देखने को मिला है, उसे [illegible] लेखक ने भी कच्छ के राजकीय संग्रह में देखा है जिसका यहाँ [illegible] परिचय दिया जा रहा है । " मृदंग मोहरा " का ग्रंथांश कुछ पन्नों के रूप में मिलता है, जिसके प्रथम पृष्ठ पर गुजराती लिपि में यह लिखा गया है :

" ताल्वीधी जाणवानुं " और इसके बाद पोस्टकॉर्ड साइज

के छः सात पृष्ठों में मृदंग के बोलों के पाँच " पिलमरू " दिये हैं जिसकी प्रतिलिपि यहाँ दी जाती है :

" : ।। श्री गणेशाय नमः ।। एर्द० ।। अथ प्रथम थेईमान लिख्यते ।। तालतेतालो या को रूप ।। ता नो ।। या की चाली ।। तेते थेई ।। या में थेईमान केहेत हैं ।। थेई तेते तीधी थेइ । तेथे ईया ।। ते ते ती धी त्रात्रा त्था । तिग दिग थेइ ।। दुतीय व्यंजन ताल में पिलमरू केहेत हैं ।। थाधी तक तक धिकि तक थुंगा तक थुंगा ।। ता थुंगा थुंगा तक थुंगा थोंमू थुंगा ।। थो थोंग तकधि किता घि कथो ।। तक तक धि दिगन थेई ।। १ ।। इति प्रथम पिलमरू समाप्तं ।। अथ द्विवतीय पिलमरू लिख्यते ।। था धिकि तक तक थो ।। था था था धिकि तक तक थो । तक थो धिकि थो धिकि तक तक थो । धिलांग तक धि दिगन थेइ ।।२।। इति द्विवतीय पिलमरू समाप्तं ।। अब तृतीय ० ।। त्र थुंगिटि ताधी कथा ।। तक तक धिकि तक धिलांग थो । त्र त्र थुंगिटि ता धी कृथो ।। तक तक धिकि तक धिलांग थो ।। धिलांग थो धित्थां धिधि त्था धिलांग तक धि दिगन थेई ।। ३।। इति तृतीय० ।। अथ चतुर्थ पिलमरू केहेत हैं ।। द्रिग्डदांधिधि किटि तक धिकि तक ।। तक धिकि तक तराग तक थो ।। तक तक धिकि तक तक धिकि तक तरांग त कथो ।। ताथो तक तक धिकि तक ।। तक धिकि तक तरांग तक धिदिगन थेई ।।४।। इति चतुर्थ पिर्लमरू समाप्तं ।। अथ पंचम पिलमरू कहत है ।। तधुमता धिग्डिता धि धि किटि तक ।। त धुम ता धि लांग तक धि ~~ल ल~~ दीगन था ।।५।। इति पंचमी ।। अथ छठी कहत है ।। ।। ता ता - - - - - - - - - " यहाँ से आगे की प्रति अधूरी है ।

" मृदंग मोहरा " की प्रामाणिकता :

मृदंग के बोलों के उक्त पन्नों पर कहीं भी लेखक ने अपना और कृति का नाम लिखा नहीं है। इन बिखरे पन्नों को देख कर पता नहीं कैसे उन्हें " मृदंग मोहरा " नाम दिया गया है। अनुमानतः गोविंद गिल्लाभाई ने कवि की इस नाम की कृति का उल्लेख किया है (अब हो सकता है उन्होंने इसका पूर्ण या अपूर्ण अंश देखा भी हो) इसी के आधार पर पश्चवर्ती विद्वानों ने इन पन्नों को देखकर " मृदंग मोहरा " नाम दिया होगा। यों भी इनमें मृदंग के बोल तो दिये ही हैं।

" मृदंग मोहरा " के स्वतंत्र-ग्रंथ की उपलब्धि के अभाव में यहाँ हमारे आलोच्य कवि के द्वारा ऐसी कोई रचना करने की संभावना पर विचार करना हमें आवश्यक प्रतीत होता है।

कवि लखपत की प्रामाणिक कृति " सदाशिव-व्याह " में जिसका उल्लेख " सुरतरंगिनी " के संदर्भ में भी पहले कर आये हैं, कुछ छंद ऐसे मिलते हैं जिनमें मृदंग के बोल या पिलमक दिये गये हैं। शिवजी भिल्नी के प्रार्थना करने पर नटवेष धारण करके गाते बजाते हैं। उस प्रसंग में कवि संगीत-नृत्य की शास्त्रीय चर्चा करने लगते हैं। " नृत्य भेद " के अंतर्गत कवि ऐसा वर्णन करते हैं :

|| छप्पय ||" मंगल करन महेस नंद थुंगा तत थुंगा ।
दुर्गापुत्र पवित्र थेइ त थेइ तत तत तुंगा ।
अष्ट सिद्धि नौ निद्धि सिद्धि वृद्धि जु भर कछघर ।
वृद्ध विनायक द्विंग जागिडदि जंग सुजुरि जयकर ।
अघघघ अनंत गुन अनवि जु पुष्ट अंद्रि तुम कौं प्रनति ।
सुष सात सहित तुअ पितु भगत अविचल करि निति
लछपति ||२०२ ||

छंद पद्धड़ी ।।

" ताधिक टिधिक्कटि धि धिक लिधि लांग ।
धुकु धुकुटि धुकुटि धित्तां धुगांग ।
ता थुंग थुंग वज्जत मृदंग ।
इमि नृतत नटेसुर नवल रंग ।। २०३ ।।
ग्रों ग्रों ग्रों ग्रिम्मांग नननंत ।
क्रिनि क्रिनि मेन किनि मेन खकरंत ।
द्रां द्रां द्रां द्रुम कटि द्रें द्रुमंग ।
इमि नृतत नटेसुर नवल रंग ।।२०४।।
संगीत सिंधु लहरी निसंग ।
पटु षिरि रिति रिरि त्रैवटि प्रसंग ।
मूंगल रन मेरि भररर अभंग ।
इमि नृतत नटेसुर नवल रंग ।।२०८।।
कल्लाग दाट निर्भनर करंत ।
मचिमान पिलिम्क मगनतंत ।
फनबि उलटि पलटि उरज सू फनलंग ।
इमि नृतत नटेसुर नवल रंग ।।२०९।।
बोलंत बुलैया तान बोल ।
तत थेइ थेइ थेइ तान बोल ।
लल उघटंत तांडव नि अंग अंग ।
इमि नृतत नटेसुर नवल रंग ।।२१० ।।
। श्री मंडलादि वाजे सुढार ।
डौं डौं उहक्क डौं उदार ।
भनि लखपति धनिपति गवरि गंग ।
इमि नृतत नटेसुर नवल रंग ।।२११।।

।। छंद पद्धड़ी ।।

" तातत्तं थेइ थेइ थेइ कार ।
ता थुंग थुंग थुंगा उचार ।
घिल्लांग लांग कुकु कृत घिलांग ।
फुनि उलट पलट भरत जु फलांग ।।२१२।।
घौं घौं मृदंग गति बजत घोर ।
घौं घौं घुम घुम घुघुम घोर ।
दांदां दां दां दां दिदि मिदप्प ।
थां थां थां थां थां थाग्डि दि थप्प ।।२१४ ।।

" सदाशिव ब्याह " के उक्त अंश को, जो मृदंग बजाने से ध्वनित होनेवाले बोलों को लेकर लिखा गया है, देखने से लगता है कि वह प्रस्तुत " मृदंग मोहरा " के बोलों से बहुत साम्य रखता है । इस आधार पर यह ~~सहज~~ सहज अनुमान किया जा सकता है कि लखपतिसिंह ने इस विषय की कोई रचना लिखी होगी, जो आज " मृदंग मोहरा " से पहचाने जाने वाले कुछ पन्नों के रूप में ही अवशिष्ट है ।

(३) 'रस-तरंग' ('लखपति शृंगार'):

महाराव लखपतिसिंह की तृतीय रचना " लखपति शृंगार " के नाम से प्रसिद्ध है जिसके नाम की समस्या पर आगे विचार किया जायगा।

प्रति परिचय :

लेखक को इस रचना की तीन प्रतियाँ देखने को मिली हैं । हेमचंद्राचार्य ज्ञान मंदिर, पाटण में उपलब्ध दो प्रतियाँ सं० १९०२ में लिपिकृत हुई हैं तथा दोनों क्रमशः ६५ तथा ३३ पत्रों में समाप्त होती हैं । तीसरी प्रति इन दोनों से काफी पुरानी ही नहीं, किंतु कवि के ही जीवनकाल में

लिखी गई होने के कारण अधिक विश्वसनीय कही जा सकती है । यह तीसरी प्रति कच्छ के राजकीय हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह, भुज से प्राप्त हुई है । उसका लिपि काल सं० १८०५ है । तथा लखपति सिंह के आश्रित कवि कुँअर कुशल द्वारा लिपिकृत है । उसके ११४ पत्र हैं जिनमें ४३७ तथा एक प्रक्षिप्त छंद मिलाकर ४३८ छंद हैं जिनमें से १५१ दोहे, २ कबित्त छप्पय, १ कबित्त, २६३ सवैये, ४ त्रिभंगी और १७ हरिपद हैं । यह प्रति पुरानी होने से उसके पत्र कीड़ों ने इस तरह खा डाले हैं कि कुछ छंद अपूर्ण या अपाठ्य हो गये हैं । परंतु प्रति अखंडित होने से सम्पूर्ण कृति उपलब्ध होती है ।

आदि : " ।। श्री गणेशाय नम : ।।

।। दोहा ।। गौरी नंद गनेश को कहौं अरज कर जोर ।
लखपति कौं हित लहरि सौं देउन उकति की दोर ।।१।।

।। कबित्त छप्पय ।। मुकुट सुघट सुभ मुंड कान छबि कुंडल छाई ।
द्विरद तुंड द्विज येक सूंडि कुंडली सुहाई ।
बरौं उदर गिरि गुहा चंड भुज दंड च्यार धर ।
धूंघ अंघ्रि धर धीर क्रिपा मो लखपति पे कर ।
भरि दृष्ट श्रेष्ट सत्तिन हि भली दक्ष दुष्ट कष्ट रन दुबन ।
चंडी अखंड हित कुंडलित बर मंगल भर मृड सुवन ।।२।।

गणेश स्तुति के पश्चात् क्रमशः भगवान रामचंद्र, सदाशिव तथा कुलदेवी महामाता आसापुरा की स्तुति की गई है । ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय का प्रारंभ इस प्रकार किया गया है :

" कवि रसग्रंथ किये जिते, तिते अनूप अपार ।
रस तरंग लखपति रचत, अपुनी मति अनुसार ।।११।।
रस नव पैं सिंगार रस, सरस रसिक रुचि पाय ।
अधिकी या में नायिका, सब जन चित सुहाय ।।१२।।

अंत:

|| दोहा || "वृंदारक भाषा करी यौं नर भाषा न्याय ।
जानैं रस कौं जग समुझैं सकल सुभाय ||४३६||
कीन्हौं लषपति कछपति, भलै सुनौं कवि भूप ।
सुंदर क्रित अनुरूप यह रस तरंग रसरूप ||४३७||
महाराउ लषपति कियौं । शुभ लषपति सिंगार ।
रच्यौं देषि रसमंजरी सकल रसनि कौं सार ||४३८|| "

" इति श्री मन्महाराउ लषपति कृत लषपति शृंगार संपूर्णताम् बीभ जात् || सकल महीपाल मौलि मुकुटमणि मरीचि चर्च्चित चरणारविन्द महाराज कुमार श्री २१ श्री लषपति दत्त पद सकल भट्टारक पुरंदर भट्टारक श्री ७ कनक कुशल सूरि शिष्य पंन्यास कुंअर कुशलेनालेखि || संवत् १८०५ वर्षे आश्विन शुक्ल विजय दशम्यामिति श्रेय सांतति || श्रीः || श्रीः || श्रीः || "

रचनाकाल :

ग्रंथ के अंतःसाक्ष्य के आधार पर इसका रचनाकाल सिद्ध नहीं होता । केवल, प्रतिलिपिकार कुँअर कुशल ने सं० १८०५ की विजया-दशमी को प्रतिलिपि की समाप्ति का उल्लेख किया है । इसलिये यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि लखपतिसिंह ने सं० १८०५ के पूर्व और अपनी प्रथम रचना (सं० १७९५) के बाद किसी वर्ष इसकी रचना की होगी । प्रतिलिपि की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय तथ्य है कि प्रतिलिपिकार स्वयं एक विद्वान् आचार्य था और यह कार्य उसने लखपतिसिंह जी के जीवन काल में ही पूर्ण किया था ।

"लखपति शृंगार " या "रसतरंग " :

जैसा कि लक्ष्य किया जा चुका है विद्वानों में यह रचना

" लखपति शृंगार " के नाम से प्रसिद्ध है,[१२] किन्तु उसके नामकरण की समस्या यहाँ विचारणीय है । मुज से उपलब्ध प्रति के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि रचना का यह शीर्षक कवि द्वारा अभिप्रेत न था । पूर्ववर्ती पृष्ठों में दी गयी पुष्पिका अवश्य उक्त नाम का समर्थन करती है । अतः सम्पूर्ण ग्रंथ से प्राप्त होने वाले तथ्यों को यहाँ ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है :

(१) कवि ने छन्द क्र० ११, १६७ में ग्रंथ का नाम " रस तरंग " स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया है ।[१३]

(२) छन्द संख्या ४०६ के पश्चात् विप्रलंभ शृंगार के प्रकरण की समाप्ति की सूचना में भी यही नाम आता है —

" इति श्री रस तरंगे कुंअर श्री लषपति विरचिते
विप्रलंभ शृंगार संपूर्ण ।। "

(३) ग्रंथ की समाप्ति तथा विषयगत आधार का सूचक यह छन्द भी उपर्युक्त नाम की पुष्टि करता है –

" कीन्हौ लषपति कछपति, भलै सुनो कवि भूप ।
सुंदर कित अनुरूप यह रसतरंग रसरूप ।।" (छन्द संख्या ४३७)

उपर्युक्त अन्तसाक्ष्यों से स्पष्ट है कि मूलग्रंथ में उस के "रस-तरंग" नाम की चर्चा है ; अतः सम्भव है कि प्रतिलिपिकार ने क्षिप्रतावश या आश्रयदाता लखपतिसिंह के नामोल्लेख के व्यामोह से उत्पन्न भ्रम के कारण पुष्पिका में "लखपति शृंगार " लिख दिया हो । लेखक का नम्र निवेदन है कि

oooooooo

१२ "गुजराती", सांप्ताहिक, दीपावली विशेषांक, सन् १९११, (सं० १९६७) पृ० ५४,५५ लेख "लखपति शृंगार", ले० जीवराम अजराम गोर। गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस, बम्बई ।

१३ "कवि रसग्रंथ किये जिते, तिते अनूप अपार ।
रसतरंग लषपति रचत अपुनी मति अनुसार ।।११।। "

पूर्वनिर्दिष्ट विद्वानों ने अपने नामोल्लेख में उक्त पुष्पिका को ही आधार बनाया गया है । संपूर्ण कृति के सजग अनुशीलन द्वारा यदि उन्होंने कष्ट उठाया होता तो यह निश्चित है कि " लखपति शृंगार " नामोल्लेख के प्रेम के भाजन वे न बने होते । पुष्पिका के सम्बन्ध में दूसरी बात यह उल्लेखनीय है कि नामवाले अंश को हरताल से मिटाकर " लखपत शृंगार " लिखा गया है जिसके अक्षर भी मूल लेखक से नितान्त भिन्न हैं । अतः इस तथ्य से भी हमारे उपर्युक्त निष्कर्ष और सम्भावना की पुष्टि होती है और यह भी निश्चय ही कहा जा सकता है कि प्रतिलिपिकार कुँवर कुशल ने "रसतरंग " ही लिखा होगा तथा हरताल लगाकर नाम बदलने का प्रयास किसी अन्य परवर्तीकालीन व्यक्ति की कृपा का परिणाम होना चाहिए।

अतः उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में इस ग्रंथ का नाम "रसतरंग" ही ठहरता है ।

" रसतरंग " का कर्ता :

सन् १९११ में कच्छ के प्रसिद्ध विद्वान् तथा ब्रजभाषा के कवि जीवराम अजरामर गोर ने अपने एक लेख में "लखपति शृंगार " के कर्तृत्व सम्बन्धी एक विवाद प्रस्तुत किया था [१४] जो कि इस प्रकार है –

भुज (कच्छ) की ब्रज भाषा के आचार्यों की भट्टार्क परंपरा के भट्टार्क जीवन कुशल ने यह मत प्रदर्शित किया था कि "लखपति शृंगार "

oooooooo

१४ द्रष्टव्य : सन् १९११(सं० १९६७) का "गुजराती "साप्ताहिक दीपावली विशेषांक, पृ० ५४–५५ लेख: "लखपति शृंगार ", लें० जीवराम अजरामर गोर।प्राप्तिस्थान : गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई ।

उनके पूर्वज प्रथम भट्टार्क कवि कनक कुशल जी ने लिखा था, महाराव लखपतिसिंह जी का तो केवल नाम ही लिख दिया गया था । परंतु इसका विरोध करते हुए व्रजभाषा पाठशाला के तत्कालीन आचार्य प्रज्ञा-चक्षु त्रिपाठी प्राणजीवन मोरारजी ने कच्छ के महाराव और दीवान तक यह विवाद पहुँचाया । दीवान रा० रा० रणछोड़भाई उदयराम गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् थे जिन्होंने इस साहित्यिक चर्चा में भाग लिया । उन्होंने उक्त लेख के लेखक श्री जीवराम जी से " लखपति शृंगार " के कर्ता के विषय में अपना पक्ष स्पष्ट करने के लिए कहा । अपने मत की स्पष्टता करते हुए भी जीवराम ने बताया कि " लखपति शृंगार " महाराव श्री लखपति सिंह जी ने ही लिखा था । अपने पक्ष में उन्होंने निम्नलिखित तर्कों को प्रस्तुत किया था :

(१) " लखपति शृंगार " के अतिरिक्त महाराव लखपतिसिंह ने अन्य रचनाएँ भी की थीं, जिनमें उनके नाम की छाप भी मिलती है । इससे उनमें कवित्व शक्ति थी यह सिद्ध हो जाता है ।

(२) दूसरों के रचे ग्रंथों को अपने नाम चढ़ा देने का स्वभाव उनका नहीं था ।

(३) भट्टार्क कनक कुशल जैन यति थे, जो शृंगार रस का ऐसा स्वानुभव सिद्ध ग्रंथ रचने की मनोवृत्ति के नहीं हो सकते ।

(४) दूसरा यह भी कि ग्रंथ के मंगलाचरण में गणपति, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, महादेव, आसापुरा माता की जिस श्रद्धा भाव से वंदना की गई है, वह किसी जैन धर्म में दीक्षित साधु के लिये असंभव है ।

(५) कनक कुशल विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे परंतु उनका कोई भी काव्य-ग्रंथ इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ ।

(६) "लखपति शृंगार " के अंत में कवि ने अपना नाम भी दे ही दिया है । जीवराम अजरामर गोर ने लिखा है कि उनके द्वारा प्रस्तुत उक्त दलीलों को सुनकर " लखपति शृंगार " के कर्ता के विषय में दीवान रणछोड़भाई उदयराम के मन का संदेह निवृत्त हो गया था ।[१५]

" लखपति शृंगार " के कर्तृत्व को लेकर उपर्युक्त विवाद के पश्चात् आज तक कोई मत-वैभिन्य का प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ है । कवि के रूप में लखपति की छाप ग्रंथ के आदि अंत एवं मध्य के अनेक छंदों में देखने को मिलती है, इसलिए इसको लखपतिकृत मानने में कोई आपत्ति नहीं है ।

विषय-वस्तु :

रचना के आरम्भ में नौ रसों में रसिकों की रुचि के अधिक अनुकूल शृंगार को तथा शृंगार रस के आलंबन के रूप में नायिका को अधिक महत्त्व देते हुए लखपतिसिंह ग्रंथ के वर्ण्य-विषय की सीमा के प्रति संकेत कर देते हैं । सर्वप्रथम स्वकीया, परकीया और सामान्या के तीन भेदों को गिना कर कवि लक्षण-उदाहरण पद्धति से प्रत्येक का सविस्तार परिचय देते हैं । उक्त तीन भेदों में से नायिका की अवस्थाओं के अनुसार स्वकीया नायिका के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेद किये हैं । इसके आगे इन तीनों के अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा, धीरा और अधीरा तथा ज्येष्ठा, कनिष्ठा आदि भेद गिनाये गये हैं और सभी भेद-उपभेदों को लक्षण-उदाहरण शैली में प्रस्तुत किया गया है ।

---

१५ " गुजराती " साप्ताहिक सन् १९११, पृ० ५४-५५

स्वकीया नायिका के बाद परकीया तथा उसके गुप्ता, वाक्विदग्धा, क्रिया विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता, अनसुयना आदि भेद गिनाये गये हैं। इसी प्रकार सामान्य नायिका का लक्षण देते हुए उसके उपभेदों को प्रस्तुत किया है जैसे — अन्य संभोग दुखिता, वक्रोक्ति गर्विता, रूप गर्विता आदि।

तीन प्रकार की नायिकाओं के भेदोपभेदों के पश्चात् नायिकाओं के मान का वर्णन किया गया है। लघु, मध्यम और गुरु मान के उदाहरण दिये गये हैं। इसके बाद कवि लिखते हैं :

दो० " उत्तम औ मध्यम अधम दिव्य अदिव्य दिषाय।
जो बरनै तौ जुवतियाँ बहुत ग्रंथ बढि जाय ।।११५ ।। "
" याही तैं संछेप यह चित सौं कियो विचार।
कहत जु आठों नायिका रस सिंगार को सार ।।११६ ।। "

इस प्रकार अब कवि अवस्था भेद के अनुसार " अष्ट नायिका " वर्णन करते हैं। प्रोषित पतिका, खंडिता, कलहंतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता (उत्तना), वासक सज्जा, स्वाधीन पतिका और अभिसारिका के लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। अवस्था तथा स्वकीयादि भेदों के अनुसार आठों नायिकाओं का विभाजन किया गया है। अभिसारिका के दिवाभिसारिका, चंद्राभिसारिका, तमिश्राभिसारिका, आदि भेद दिये गये हैं।

नायिका भेद के इस विभाजन के अंतर्गत अंत में पद्मिनी, चित्रिनी, शंखिनी और हस्तिनी आदि भेद भी गिनाये गये हैं।

शृंगार-रस के मुख्य आलंबन के रूप में, इस प्रकार, नायिका का विस्तृत निरूपण करने के पश्चात् शृंगार के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत सखी और दूती तथा उनके कर्मों का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

इसके आगे कवि लिखते हैं :

" रस बिबि तैं सिंगार है जानत सबहिं सुजान ।
कही जु पहिली नायिका बिय नायक हिं बषान ।। "

तदनुसार ~~अब~~ अब कवि नायक वर्णन करते हैं । नायक के भी प्रमुख तीन भेद, पति, उपपति और वैसिक बताये हैं । इसके बाद चतुर्विध नायक अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ के लक्षण प्रस्तुत किये गये हैं । इसके आगे इनके भी स्वभावानुसार उत्तम, मध्य और अधम भेदों के लक्षण गिनाये गये हैं । इसके बाद मानी चतुर, वचन चतुर, क्रिया चतुर, प्रोषित (पति, उपपति, वैसिक तीनों) नायकों के लक्षण गिनने के बाद अनभिज्ञ नायक का भी नायक के अंतर्गत समाविष्ट किया गया है ।

इसके बाद नायक-सहचरों में नर्म सचिव, बिट, चेटक, विदूषक भी गिनाये गये हैं ।

शृंगार रस के आलंबन तथा उद्दीपन के बाद अनुराग वर्णन किया गया है जिसमें दर्शन और श्रुतानुराग के दो प्रकार गिना कर दर्शनानुराग के स्वप्न, चित्र और साक्ष्यदर्शन ऐसे तीन उपभेद भी गिनाये गये हैं ।

तत्पश्चात् शृंगार रस की व्याख्या दी गई है । संयोग और वियोग शृंगार ऐसे शृंगार के प्रकार दिखाकर सात्त्विक अनुभाव तथा अलंकारों के अंतर्गत क्रमशः स्तंभ, कंप, विवर्ण, अश्रु, स्वेद, पुलक, लीनता और सुरभंग ऐसे आठ सात्त्विक स्वभावज अलंकारों में लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित् मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, विद्धृत तथा मद, तपन, मौग्ध्य और विक्षेप भी गिनाये गये हैं ।

इस प्रकार शृंगार रस के हाव भाव की चर्चा समाप्त होती है । तत्पश्चात् विप्रलंभ (वियोग) शृंगार की चर्चा की गयी है । वियोग

के दो कारणों के आधार पर — प्रिय के परदेश गमन तथा एक ही स्थान पर लज्जा, संकोचादि के कारण — इसके दो भेद भी गिनाये हैं ।

वियोग शृंगार के अंतर्गत दस काम दशाओं का भी वर्णन किया गया है । अभिलाष, स्मृति, गुणकथन, चिंता, जड़ता, उद्वेग, प्रलाप, व्याधि, उन्माद और मरण को इसमें गिनाया गया है ।

नायक-नायिका के संयोग-शृंगार को लक्षित करके चेष्टावर्णन किया गया है ।

इसके पश्चात् केशवर्णन, बक्रनिवर्णन, स्नान, परदेश से आये प्रिय से मिलन, रोमावली वर्णन, अलक वर्णन, नीबीवर्णन, बानीवर्णन आदि नायिका के मंडन, सुसज्जा आदि तथा अंगादि का वर्णन किया गया है ।

अंत में शृंगार के उद्दीपक विभाव के रूप में ज्योत्सना का प्रकृति वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार " लखपति शृंगार " ४३८ छंदों में समाप्त होता है जिसमें १५१ दोहे, २ कवित्त छप्पय, १ कवित्त, २६३ सवैये, ४ त्रिभंगी छंद और १७ हरिपद छंद आये हैं ।

(४) ' लखपति भक्ति विलास ':

प्रति-परिचय : महाराव लखपतिसिंह की चतुर्थ कृति " लखपति भक्ति विलास " एक खंड-काव्य है । प्रस्तुत कृति की एक ही प्रति उपलब्ध [illegible] है जोकि बड़ौदा विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह में [illegible] सुरक्षित है । यह रचना लखपतिसिंह के आश्रित कवि कुँवर कुशल द्वारा सं० १८१६ वि० में लिपिबद्ध

हुई और यही उसका रचनाकाल भी है । " लखपति भक्ति विलास " के आदि, अंत और पुष्पिका के अंश इस प्रकार हैं :

आदि : " अथ श्री म्हाराउ लषपति कृत लषपति भक्ति विलास लिख्यते ।।

।। दोहा ।। " संपति दुति मति द्यौ सदा गौरी तनय गनेश ।
लषपति लष प्रनति हिं करत वारन मुष नरबेस ।।१।।
कर जोरैं लषपति कहत बिनती बार हजार ।
गुन प्रभु के गाऊनं सदा यह करियैं उपगार ।।२।।
अपनी इछातैं इतौ जग प्रपंच जिनि कीय ।
सुमिरन यह प्रभु कौ सदा होऊन लषपति हीय ।।३।।
करुना करि जगजीव के पोषत निंतिं ही प्रान ।
साहिब ऐसे कौ सदा धरतु लषप्पति ध्यान ।।४।।
हिय मेरे मैं प्रभु रहौ क्यौं ऐसी कहि जाति ।
मन तातैं तुम भगति मैं राषि सदा दिन राति ।।५।।
मन रातौ स्याम हिं मिल्यौ गूढा भयो न गात ।
ऊजलता पाई अषिल यह अचरिज अवदात ।।६।।
अलष अमुरत अजर अज अक्ल अनंद उजास ।
अमर आदि नर कौ सदा दिलसुध लषपति दास ।।७।।
निराधार आधार निति सरन सधार सुजान ।
भवदुष भंजन हे प्रभू पोषक लषपति प्रांन ।।८।। "

अंत :

कवित्त छपै – " इहिं प्रकार प्रभु आप रूप नरहरि अवतार्यौ ।
कठिन वज्र नष कुटिल हिर कस्यप हिय फार्यौ ।

प्रगट उधारि पलाद देव महि मंडल दीन्हौ,
ईस असुर कौ कियौ मगति लषि जिहिं मान मीन्हौ ।
यह बिरनद मयौ लषपति अचल जग मह जस विस्तार हुअ ।
नरहर सरूप करिकैं नवल भार उतार्यौ अषिल मुअ ।।६६२।।

दोहा – लषपति जग लीला करत नरहरि हरि कौ नाम ।
मगति कियैं जौ मजत तौ सुषदाता है स्याम ।।६६३।।
रघुवर पद पंकज सुरभि, भरयौ भत्ति रस ~~भाव~~ भाउ ।
लषपति भत्ति विलास यह, रच्यौ लषपति राउ ।।६६४।।
संवत रितु ससि आठ इकु माघ मास सित भास ।
तिथि तेरसि बुध रुचि रच्यौ, लषपति भत्ति विलास ।।६६५।। "

पुष्पिका: " इति श्री मन्महाराउ लषपति कृत लषपति भत्ति विलास संपूर्ण सकल भट्टारक पुरंदर भट्टारक श्री कनक कुशल सूरि शिष्य पं० कुंअर कुशलेन लिखि: ।। संवति १८१६ वैशाष शुदि १४ भौम ।। शुभं भवतुं ।। कल्याणमस्तु ।। श्री: ।। श्री: ।। श्री: ।। "

प्रति की स्थिति :

यह प्रति अत्यंत पुरानी एवं जीर्णावस्था में है । पानी से भीगने के कारण अनेक स्थलों पर स्याही फैल जाने तथा चिपके हुए पत्रों को अलग करने के परिणामस्वरूप अनेक छंद आपाठ्य और अपूर्ण रह गये हैं । अन्य प्रति की प्राप्ति के अभाव में पाठमेद एवं अपूर्ण छंदों की पूर्ति नहीं की जा सकी है ।

रचनाका नाम :

पूर्ववर्ती अध्येता डॉ० कुँवर चन्द्र प्रकाशसिंह ने इस रचना का परिचय " हरि भत्ति विलास " नाम से दिया है, [१६] जबकि रचना के

oooooooo

१६ "भुज(कच्छ) की व्रजभाषा पाठशाला", पृ० १४

आदि, अंत में कहीं भी नामोल्लेख नहीं प्राप्त होता । इतना ही नहीं, इस रचना का " हरिभक्ति विलास " नाम से परिचय देने से पूर्व डॉ० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह ने उसी को " लखपति भक्ति विलास " नाम से भी गिनाया है । [१७] हो सकता है उन्हों ने उसमें वर्णित नृसिंह अर्थात् नरहरि के अवतार की कथा के कारण " हरिभक्ति विलास " नाम अपनी कल्पना से दिया हो, परंतु यह निर्विवाद है कि ग्रंथ के अंत:साक्ष्य के आधार पर " लखपति भक्ति विलास " ही इस रचना का सही नाम है ।

प्रतिपाद्य विषय :

" लखपति भक्ति विलास " में भक्त प्रह्लाद की श्रद्धायुक्त, एकनिष्ठ भक्ति एवं तत्त्वज्ञान का तथा नृसिंहावतार का वर्णन किया गया है जिसमें भौतिक जगत् की मोहमाया के प्रति तिरस्कार, ग्लानि एवं वैराग्य भावना की तत्वज्ञान पूर्ण मार्मिक उक्तियाँ भी मिलती हैं । ६६५ छंदों में संपूर्ण होनेवाले इस खण्ड-काव्य का प्रतिपाद्य विषय भगवद्भक्ति है ।

कथा-सूत्र :

असुरराज हिरण्यकश्यपु अपनी तपश्चर्या के बल पर ब्रह्मा से इच्छित वरदान पा कर अभिमानी बन जाता है । वैभव, विलास और शक्ति के मद में वैदिक धर्म, आचार-विचार से विपरीत आसुरविद्या का प्रचार एवं शिक्षा-दिक्षा का आग्रह रखने लगता है । अपने ही पुत्र प्रहलाद को वह असुरविद्या सीखाने में असफल होता है । वह उसे पर अनेक अत्यार करता है परंतु प्रत्येक बार भक्त प्रह्लाद की अद्भुत रक्षा होती देख वह उस भगवान् को देखना चाहता है । प्रह्लाद को भक्ति के महत्त्व, भौतिक-शारीरिक क्षणभंगुरता का मर्मस्पर्शी उपदेश देते हैं । अंत में भगवान् नृसिंह का अवतार होता है । हिरण्यकश्यपु के वध के बाद प्रह्लाद को राजसत्ता सौंप दी जाती है । इस प्रसंग के साथ "लखपति भक्ति विलास " की कथा

---

१७ "भुज की व्रजभाषा पाठशाला", पृ० ९२.

समाप्त होती है । प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के पंचम अध्याय के अंतर्गत इस खण्डकाव्य का विस्तृत विवेचन किया जायेगा ।

(५) " सदाशिव-ब्याह " :

प्रति-परिचय :

" सदाशिव-ब्याह " महाराव लखपतिसिंह की पाँचवीं और अंतिम रचना है । यह एक खंड काव्य है । श्री अगरचन्द जी नाहटा ने सन् १९४७ ई० में इस रचना की एक सम्पूर्ण प्रतिलिपि का परिचय दिया था । [१८] यह प्रतिलिपि संवत् १८५७ की होने से मूल कृति के रचनाकाल चालीस वर्षों के पश्चात् लिखी गई है । यह प्रति मूल रचना के निकटतम समय की होने के कारण प्रामाणिक कही जा सकती है । नाहटा जी के द्वारा दिये गये परिचय के आधार पर लेखक ने राजस्थान प्राच्य-विद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर के हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह में उक्त प्रतिलिपि को देखा है, एवं उसकी संपूर्ण प्रतिलिपि उसके पास वर्तमान है ।

---

१८ " राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज ", द्वितीय भाग, पृ० २१६-२१७ ; ले० श्री अगरचन्द जी नाहटा, सन् १९४७, प्रकाशक : उदयपुर विद्यापीठ सरस्वती मंदिर, प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान, उदयपुर ।

श्री अगरचन्द नाहटा के अतिरिक्त, प्रस्तुत रचना का परिचय बड़ौदा विश्व विद्यालय के भूतपूर्व हिन्दी-विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर डॉ० कुँवरचन्द्र प्रकाश सिंह ने भी अपने शोध-निबंध में दिया है । [१९] उन्होंने जिस प्रतिलिपि का परिचय दिया है, उसे भी लेखक ने देखा है और वास्तव में वह प्रतिलिपि जर्जर अवस्था में, अपूर्ण और खण्डित है और उसमें कुल चालीस ही छन्द हैं तथा उपसंहारात्मक अंश अनुपलब्ध है । परंतु सन् १९६३ ई० में प्रकाशित उक्त शोध-निबंध के विद्वान् लेखक का ध्यान यदि सन् १९४७ ई० में प्रकाशित श्री नाहटा जी के " राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज " के द्वितीय भाग में दी गई प्रस्तुत रचना की सम्पूर्ण प्रतिलिपि के प्राप्य होने की जानकारी की ओर गया होता तो " सदाशिव-व्याह " के रचनाकाल की समस्या, जो उन्होंने उस अपूर्ण प्रतिलिपि के आधार पर उठायी है, वह कदापि उपस्थित न होती । यहाँ

oooooooo

१९ " भुज (कच्छ) की व्रजभाषा पाठशाला ", १९६३, बड़ौदा विश्व विद्यालय प्रकाशन :

" इनके अतिरिक्त महाराव लखपतिसिंह के लिखे हुए तीन अन्य ग्रंथ " लखपति भक्ति विलास", " शिव ब्याह " और " सुर तरंगिनी " भी मुझे देखने को मिले हैं, जो बड़ी जर्जर अवस्था में हैं । ------ इस ग्रंथ (शिव ब्याह) की जो प्रति मुझे मिली है, वह अपूर्ण और खंडित है । ------ इस ग्रंथ की जो खंडित प्रति मेरे पास है उसमें कुल चालीस छंद हैं । उपसंहारात्मक अंश अनुपलब्ध होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रंथ की रचना कब हुई । "

" सदाशिव-ब्याह " का विवरण एवं विवेचन उक्त सम्पूर्ण प्रतिलिपि के आधार पर किया जाता है ।

प्रति की स्थिति : राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान में सुरक्षित " सदाशिव ब्याह " की यह मूल प्रतिलिपि सुस्पष्ट एवं सुवाच्य अक्षरों में लिखी गई है । उसकी कुल पत्र संख्या ३३ है तथा ११"×५" आकार के प्रत्येक पत्र में ११ पंक्तियाँ तथा ३० अक्षर हैं।

ग्रंथारंभ : " एक रदन आनंद घर, दुख हर शिवसुत देव ।

।। दोहा ।।

प्रांजलि लषपति पैं कृपानिजरि करहु नितमेव ।।१।।
शिवरानी जानी जगत, बरनत हौं तुव ब्याह ।
सेवक लषपति कै सदा, अविचल करि उछाह ।।२।।
महिमानी माता तुहमैं, ब्रह्मानी बरबीर ।
भवा भवानी भारती, रक्षा कर लषधीर ।।३।।
भुव धरिनी करनी भई, शिव-धरिनी सुषदाय ।
हरिनी दुष की हौ सदा, पूजित सुरनर पाय ।।४।।
मेरे मन मांही सदा, बसौ ईसुरी बास ।
लषपति सेवक सुद्रिग लषी अषिल सफल करि आस ।।५।। "

अंत : " इहि प्रकार जग ईस जोग तजि भोग सु भीन्हौ

-।। कवित्त छप्पय ।। नेम छांडि वन मांभि नांच नारी पैं कीन्हौं ।
चंचल द्रिग करि चित चतुर सबरी कौं चाही ।
ब्रह्म आदि सुर संग आय उमया कौं ब्याही ।
आनंद भयौ अंग अंग अति, भुवन तीन संतति भरन ।
किरतार सदा लषधीर के सफल मनोरथ सुषकरन।।३७१।।

|| दोहा | सुनैं पढ़ैं सुग्यान नर, सुभै यह शिव को ब्याह ।
सकल मनोरथ सिद्धि कर अचल होँ हिं उछाह ||३७२||
संवत ठारह सैं ऊपरि सत्रह वर्ष सुजान ।
सावन सित पाँचैं सुकर पूरन ग्रन्थ प्रमान ||३७३||
इति श्री मन्म्हाराउ लषपति विरचित सदाशिव-ब्याह संपूर्न || ""

" संवत १८५७ ना वर्षे शाके १७२२ प्रवर्तमाने श्री माघ मासे कृष्ण पक्षे ११ एकादशी तिथौ चन्द्र वासरे लीषितं पं० । श्री १०८ श्री विनित कुशल गणि तत् शिष्य श्री ग्यानकुशल गणि लीषीतं तत् शिष्य पं० कुंअर जी वाचनार्थं लीषितं श्री भुज नगरे लीषितं || "

" सदाशिव-ब्याह " की कुल पद्य-संख्या :

राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान की इस प्रतिलिपि की परीक्षा करने से यह तथ्य सामने आता है कि इसमें लिपिकार की असावधानी से पद्यगणाना में दोष रह गया है । परिणामस्वरूप प्रतिलिपि के अंतिम पद्यांक ३७३ को ही मूल " सदाशिव-ब्याह " की कुल छन्द-संख्या का अंक मान लिया गया है ।[२०] प्रतिष्ठान की प्रति में अंकों का पुनरावर्तन इस प्रकार हो गया है । छंद क्रमांक १२० के पश्चात् बिना अंक दिये एक छंद लिखा गया है और इसके बाद जो " मीलरी विलाप " दिया गया है वह १२१ के बदले पुनः १०१ से ही गिना गया है । इस प्रकार भर्ती के एक छन्द तथा इन बीस छन्दों को मिलाकर इक्कीस छन्दों की गणना नहीं की गई है । तदुपरांत छंद क्रमांक २०२ के दो छन्द दिये गये हैं । इस प्रकार कुल २२ छन्दों की

oooooooo

२० (अ) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के हिंदी हस्तलिखित ग्रंथ- [illegible] (शीर्षक "सदाशिव-ब्याह") पर चिपकाई गई चिट पर कुल पद्य संख्या ३७३ लिखी गई है ।

(आ) द्रष्टव्य : " राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज", द्वितीय भाग, पृ० २१६, ले० श्री अगरचन्द नाहटा, प्रकाशक : उदयपुर प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान, उदयपुर ।

गणना मूल प्रतिलिपि कार से ही छूट गई है । इसलिए यह कहा जा सकता है कि लखपतिसिंह द्वारा रचित " सदाशिव-ब्याह " मूल में ३१५ छन्दों में समाप्त होता है जो प्रतिलिपिकार के प्रमाद के कारण श्री नाहटा जी आदि द्वारा ३७२ छन्दों का माना जाता रहा है ।

कथा-सूत्र :

दक्ष-यज्ञ में सती-दहन के प्रसंग से इस खण्डकाव्य की कथा का आरंभ होता है । तत्पश्चात् शिव जी क्रोधित हो कर दक्ष-यज्ञ का संहार करवा डालते हैं और तदनन्तर वे संसार से विरक्त हो कर कठिन तपश्चर्या में लीन हो जाते हैं । ब्रह्मा और देवों को संसार की प्रजावृद्धि की चिंता होती है और विष्णु के आदेशानुसार वे पार्वती को शिव के तपो-भंग के लिये प्रेरित करते हैं । पार्वती जी भीलनी का वेश ले कर उनको मोहित करने में सफल होती हैं । शिव उन से प्रेम-निवेदन करते हुए विवाह के लिये प्रस्ताव रखते हैं । अनेक प्रलोभन दिखाते हैं । उत्तर में भीलनी अत्यंत कठोर शब्दों में उनका निरादर करती जाती हैं । अंत में वे अपने पति एवं देवर-जेठों को पुकारती हैं । शिव भीलों का संहार कर डालते हैं । उस पर भीलनी विलाप करती हैं । शिव जी विवाह की शर्त पर भीलों को पुनर्जीवित कर देते हैं । भीलनी विवाह के लिये राजी हो जाती हैं परन्तु इस के पूर्व वह शिव जी को नटवेश धारण करके नृत्य दिखाने के लिये प्रार्थना करती हैं । शिव नृत्य करते हैं । उन को भीलनी के असली पार्वती रूप का पता भी चल जाता है । अंत में दोनों के विवाह का प्रसंग वर्णित किया गया है । पंचम अध्याय के अंतर्गत प्रस्तुत खण्डकाव्य का विस्तृत विवेचन किया जायेगा ।

लखपतिसिंह की फुटकल रचनाएँ :
ooooooooooooooooooooooooo

महाराव लखपतिसिंह की उक्त पाँच कृतियों के अतिरिक्त उनके रचित तीन फुटकल सवैये भी उपलब्ध हुए हैं । भुज (कच्छ) के राजकीय ग्रंथ-संग्रह में लेखक को ऐसा एक पत्र देखने को मिला जिस पर " अथ राउ श्री लषपत जी ना सवैया लष्या छे " ऐसा लिखने के पश्चात् तीन सवैये लिखे गये हैं । यह पत्र ग्रंथबद्ध न होकर अलग से उपलब्ध हुआ है, इसलिए यह शंका की जा सकती है कि उसके साथवाले अन्य पत्र भी होंगे परंतु जो अनुपलब्ध हैं । संभव है लखपतिसिंह ने अन्य सवैये भी लिखे हों । उपलब्ध तीन सवैयों की प्रतिलिपि यहाँ दी जाती है, जिनका विषय है ग्लानि पूर्ण आत्मदर्शन, निर्वेद और अवसाद की तीव्र अनुभूति और शिवभक्ति । " अथ राउ श्री लषपति जी ना सवैया लष्या छे ।।

इसुरता कछु पाइआं न मे । यों करी जांनत द्वे(सर्व) मेरी ।
काहु पे रीजत काहु पे षीजत । अंग अजांन गुमांन भरे री ।।
पे लषधीर वे मोह के धंध मे । भुली के अंध से जाइ अरे री ।
काल को जाल परे सीर उपरे । होइ रहेगे ते छार की ढेरी ।।१।।
कौंन को ताओ कौंन की मात ओ कौंन को पूत रु कौंन की नारी ।
कौंन को नाल मुल कहे कौंन कों कोन को या तंनु कौंन की यारी ।।
माया के जाल मे आइ परे सब । आ(प) की आप उठावत भारी ।
नाथ के हाथ हे बात सबे । लषधीर कहे अभीमा(न) कहा री।।२।।

काहु के इष्ट हे जानकी नाथ को । काहु कुं इष्ट सदा गीरधारी ।
काहु के इष्ट विरंची गनेस को । काहु के इष्ट भवानी को आरी ।
काहु के इष्ट हे पीर पेगंबरी । काहु के सुरज हे सुष्कारी ।।
साच कहे लषधीर कहे सिवनाथ के हाथ हे बात हमारी ।।३।।

उपर्युक्त तीन सवैयों के अतिरिक्त एक भजन भी उपलब्ध हुआ है परंतु वह कच्छी बोली में और कंठस्थ है । भुज के राजगोर कान जी परसोत्तम जीकोभाने [illegible] ने लेखक को यह भजन गाकर सुनाया था । भजन का सारांश यहाँ दिया जाता है : हे प्रियतम स्नेह करके मुझको कहाँ छोड़ जाओगे । रात और दिन चलते-फिरते, बैठते-उठते मैंने तुमको ही याद किया है । तुमने यहाँ ही ध्रुव और अंबरिश को मोक्ष दिया, यहीं पर तुमने सुदामा की सुखड़ी खाई, मगर के मुँह से गज को छुड़ाया और गणिका का उद्धार किया, तुम मुझको भी यहीं पर मिलोगे ऐसा विश्वास है । कृष्ण कन्हैया को पालने में सुलाकर रेशम की डोरी से राधा झुला रही हैं । लखपत कहते हैं कि मोहन की भाव से भक्ति करो प्रभु हमसे यहीं पर मिलेंगे यह निश्चित है ।

(यहाँ कच्छी भजन की प्रतिलिपि दी जाती है)

" वैंधा किते वालम मुंसे नेडो लगाइने
रातु ए दियां जो समरण करियां वा'ला,
हलधे चलधे सूते विठे :
वालम, प्रीतम मुंसे नेडो लगाइने ।
ध्रुव ने अंबरिश सुदामे जी सुख डी वा'ला,
गज ने गणिका तार्यां हीते :
वालम मुंसे नेहडो लगाइने ।
लाल नी हिंडोळे कानुडो सूतडो भेणु,
हरि जी दोरी राधा हथे :
वालम मुंसे नेहडो लगाइने ।

कहरा लखपत मोहन भजी गीन्यो मजो भावर,
प्रभुजी मिल दे पांके हते :
वालम मुंसे नेहडो लगाइने । "

इस प्रकार महाराव लखपतिसिंह की समग्र कृतियों का सामान्य परिचय यहाँ समाप्त होता है । उनकी पाँच उपलब्ध रचनाओं में " सुरतरंगिनी " संगीत शास्त्र को लेकर और "रसतरंग" नायिका भेद विषय को लेकर लिखे गये दो शास्त्रग्रंथ हैं तथा दो -- " लखपति भक्ति विलास " और " सदा-शिव-ब्याह " भक्ति विषयक दो खण्ड काव्य हैं । " मृदंग-मोहरा " उनकी अपूर्ण रचना है जिसका विषय भी संगीतशास्त्र है । इन पाँचों के अतिरिक्त तीन सवैये और कच्छी भजन भक्ति विषयक उनकी फुटकल रचनाएँ हैं । अतः इनके कृतित्व के सम्यक् अनुशीलन के लिए सर्वप्रथम उपर्युक्त रचनाओं की विषय-वस्तु का विश्लेषण हमें आवश्यक प्रतीत होता है ।

०००